'परिवार व्यवस्था' ही संस्कारों के सुदृढ़ आधारशिला

*डॉ. भास्कर शर्मा

शोध सारांश –

परिवार व्यवस्था संस्कारों की सुदृढ़ आधारशिला है। कोरोना काल में हम सबको यह बोध अवश्य हुआ है कि एकाकीपन कितना दुःखद होता है। 'परिवार' ऐसा आधार है जिसमें सद्संस्कार पनपते हैं। शास्त्रों में परिवार व्यवस्था का मनोवैज्ञानिक व सुसंस्कृत वर्णन प्राप्त है। यदि गहनता से अध्ययन करेंगे तो पायेंगे कि ''प्राचीन परिवार व्यवस्था'' आनन्द व उमंग का विकास करने वाली थी। आज वैश्विक परिदृश्य बदल रहा है, पुरातन मूल्यों से जुड़ना होगा।

मुख्य शब्द – कुटुम्ब, परिवार, माता–पिता, पूर्वज, रामायण, ब्राह्मण।

प्रस्तावना –

मानव ने अपने सामाजिक जीवन को मजबूत, स्थिर एवं सुखमय बनाने हेतु जिन संस्थाओं को स्वरूप प्रदान किया उनमें परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई है। पारिवारिक व्यवस्था ने मानव जीवन को गतिशीलता एवं निरन्तरता प्रदान की है। वर्ष परम्परा द्वाा मनुष्य का संतति क्रम अविछिन्न रूप से आगे बढ़ता रहता है। परिवार का यह स्वरूप प्राचीन है एवं भारतीय उपमहाद्वीप की सभी जातियों में प्रचलित रहा है। भारत में संयुक्त परिवार का विचार आज भी परम्परागत रूप से विद्यमान है। परिवार अथवा कुल सामाजिक जीवन की इकाई ही नहीं बल्कि आधारशिला है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पूर्ण अवस्था पारिवारिक संगठन के अन्तर्गत संचालित होती है। माता–पिता, पति–पत्नी, भाई–बहन और पुत्र–पुत्री के संयोग से परिवार का निर्माण होता है। समाज में मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताएं होती हैं, जो परिवार के माध्यमों से पूरी की जाती है। कामेच्छा की पूर्ति, सन्तान को जन्म देना और उनका पालन–पोषण करना आदि विभिन्न व्यक्तिगत और सामाजिक कार्य परिवार के ही माध्यम से संभव है। परिवार संस्था का उद्भव और विकास इसी आधार पर हुआ है।

विवाह द्वारा परिवार का निर्माण करके मनुष्य संतानों के माध्यम से अपने को फैलाता है, लाम्बा करता है और अमर बनाता है।[2] इसलिए संस्कृत में बच्चों के लिए संतति, संतान और तनय आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। अतः परिवार अथवा कुटुम्ब एक प्राथमिक समूह के साथ–साथ मौलिक इकाई भी है, जिसमें पति–पत्नी, माता–पिता, भाई–बहन, पुत्र–पुत्री आदि सदस्य के रूप में होते है जिनका एक–दूसरे से रक्त संबंध होता है। परिवार का यह विकास समुदाय और समाज करे विकसित और संवर्धित करता है तथा उसके सांस्कृतिक जीवन को भी पल्लवित–पुष्पित करता है।

पूर्व वैदिककालीन 'जन' वस्तुतः कुछ एक वृहद परिवारों का भी समूह होता था। अतः वह 'जन' की इकाई मात्र न होकर उसकी उत्पति का ही आधार था। क्रमशः जनों के विस्तार में परिवार की स्थिति समाज की एक छोटी इकाई तक सीमित कर दी और परिवार का स्वरूप भी संकुचित होता गया। इसके अन्तर्गत अब केवल सीधे–साधे रक्त संबंधों से जुडे हुए लोग शेष रह गये। जो एक सीधे वंषानुक्रम में में परिगणित किये जा सकते थे। वैदिक समाज

प्रारंभ से ही पितृ–प्रधान था। अतः पिता से ही ऊपर या नीचे वंषाक्रम की गणना की जानी स्वाभाविक थी।

वैदिक साहित्य में प्रायः तीन से चार पीढी तक के प्राणियों के पारिवारिक दृष्टि से संबंधित होने का उल्लेख मिलता है। जिसकी पुष्टि श्राद्ध तथा अन्य यज्ञों में, पितरो के आहवान से होती है। शतपथ ब्राह्मण में हाथ धोने के लिए क्रमशः यजमन के पिता, पितामह, प्रतिमाह, शब्द का उल्लेख हुआ है। संहिता में भी प्रपितामह का उल्लेख हुआ है। अर्थवेद के एक मंत्र मे परिवार के सदस्यों के आहवान के अन्तर्गत पूर्वजों में पिता, पितामह तथा वर्षजों में पुत्र–पौत्र, पौ. को बुलाने का निर्देश मिलता है।[3] ब्राह्मण ग्रंथों में पौत्र का अधिक वर्णन किया गया है। उतर वैदिक काल तक पितरों की पूजा का रूप परिवर्तित हो चुका था। ऋग्वेद, गुक्ल, यर्जुवेद तथा अर्थवेद में उल्लेखित पितरों की पूजा में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। ऋग्वेद में पितरों का सामान्य रूप से आहवान किया गया है।[4] ऐसा ज्ञात होता है कि उनका संबंण किसी कुल विशेष से नहीं वरन् सम्पूर्ण 'जन' माना जाता था तथा यज्ञादि पवित्र अवसरों पर इनका आहवान होता था। यज्ञ के समय हजारों की सख्या में देवताओं सहित इनकी उपस्थिति की आषा की जाती।[5] जबकि उतर वैदिक साहित्य में पितृ पूजा के जो उदाहरा मिलते है उनसे स्पष्ट है कि पुत्र अपने ही पिता, पितामह आदि पूर्वजों को यज्ञ द्वारा संतुष्ट करते थे। साधारातया चार पीढ़ी के लोक एक परिवार में साथ–साथ रहते थे। जिनमें चौथा अपने तीन पूर्वजों (पिता, पितामह, प्रपितामह) से परिचित होने के कारण मृत्यु के पश्चात उन्हें बलि देता था, यदि परिवार में तीरन पीढ़ी के लोग रहते तो पितृ–पूजा में दो पीढी के पूर्वजों को स्नान मिलता। दूसरी तरफ अर्थवेद में नववधू को पोतो से युक्त परिवार पर शासन करने का आशीर्वाद दिया गया है।

शतपथ ब्राह्मण में अदिति के आठ पुत्रों का उल्लेख मिलता है।[6] इससे स्पष्ट होता है कि उस काल में संयुक्त परिवार बहुत विशाल होता था। शतपथ ब्राह्मण में विशाल संयुक्त परिवार के संबंध में कहा गया है कि जिसके घर में बहुत पुत्र है, उसका कुल बहुत बढ़ जाता है। अर्थवेद के स्वापन सूक्त और सामंजस्य सूक्ति से संयुक्त परिवार के अस्तित्व की ओर संकेत मिलता है। अर्थवेद के एक उद्धरण से स्पष्ट होता है कि परिवार संयुक्त प्रणाली पर ही आधृत था।[7] उस युग में कुटुम्ब को अक्षुण्ण बनाये रखने के भी अनेक उदाहरण मिलते है। रात्रि में परिवार के माता–पिता आदि सभी सदस्यों के सोने का विवरण अर्थवेद में दिया गया है।

कुछ पाश्चात्य समीक्षको ने सयुक्त परिवारों में संदेह प्रकट किया है। उनका कहना है कि प्राचीन काल में का परिवार संयुक्त था या नहीं, इस विषय में कोई निश्चित सम्मति नही बनायी जा सकती, क्योंकि इस संबंध में कोई निर्णायक प्रमाण नही मिलता। पुत्र युवा होने पर अपने पिता के साथ रहता था और उसकी पत्नी उसके पिता के घर का सदस्य बनती थी या पुत्र अपना नया घर बसाता था किंतु प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राप्त अनेक उदाहरणों से इस मत का पूजनीय माना गया है।[8] महाभारत में भी यही स्थिति दृष्टिगोचर होती है। जहां पिता परिवार के सभी सदस्यों का रक्षक कहा गया है। इसके पूर्व ऋग्वेद में भी पारिवारिक व्यवस्था के अन्तर्गत पिता को सभी के लिए कल्याण एवं दया का प्रतीक बताया गया है।[9] याज्ञवल्क्य स्मृति में पिता को शिक्षक के रूप में स्वीकार किया है।[10] अतः स्पष्ट होता है कि प्राचीन समय में पिता की गरिमा यशपूर्ण थी एवं उसे सभी सदस्यों पर पूर्णतया अधिकार था। पुत्रों पर उसका सर्वाधिक अधिपत्य था रामायण में राम का वनवास स्वीकार करना, तत्कालीन पारिवारिक व्यवस्था में पुत्र पर पिता के अधिकार एवं आज्ञा पालन का सर्वश्रेष्ट उदाहरण है।

वैदिककाल में पिता अपने परिवार की सम्पूर्ण सम्पति का अधिकारी होता था। वह पूर्वजों द्वारा प्राप्त सम्पति का संरक्षक था एवं अपनी अर्जित सम्पति का स्वामी माना जाता था। इसके साथ ही परिवार के सदस्यों द्वारा कमाया गया धन को भी पिता का अर्जन समझा जाता था। पिता को अपने जीवनकाल मेंआवश्यक होने पर सम्पति के विभाजन का अधिकार था एवं वह अपनी इच्छानुसार ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग, मंझने पुत्र को मध्यम एवं छोटे पुत्र को कनिष्ठ भाग दे सकता था पिता सभी पुत्रों को समान अंश भी दे सकता था। किंतु परवर्ती काल के साहित्य में

पारिवारिक सम्पति विभाजन के स्पश्ट संकेत प्राप्त होते है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर देव असुर दोनों को अपने पिता प्रजापति से दायभाग प्राप्त करने का उल्लेख हुआ है।[11] शतपत ब्राह्मण के अन्य उद्धरण मेंप्रजापति के पुत्र देवताओं तथा असुरों द्वारा पृथ्वी को बांटने का वर्णन मिलता हैं। अर्थवेद के अनुसार पिता के जीवनकाल में उसके सभी पुत्र एवं पौत्र बहुधा साथ–साथ रहते थे, यपि कभी–कभी उसकी वृद्धावस्था में उसके पुत्र पारिवारिक सम्पति का बटवारा करने की मांग करते थे।[12] पिता के जीवनकाल में ही पुत्रों द्वारा सम्पति विभाजन एक अभूतपूर्व एवं आश्चर्यजनक बात थी। इसके प्रकट होता है कि उतर वैदिक युग में पिता की असीम सता का हास होने लगा था। जबकि पूर्ववैदिक कालीन आर्यो की पितृप्रधान पारिवारिक व्यवस्था में पुत्रों पर पिता का प्रायः निरंकुश शासन रहता था। वह पारिवारिक सम्पति का वह मात्र स्वामी था और पुत्रों का साम्पतिक अधिकर मात्र नैतिक था किंतु इसक विपरीत उतर वैदिक काल में पुत्र–पिता की सम्पति पर अपना स्वाभाविक अधिकार मानने लगे थे।[13] इससे स्पष्ट है कि युग में जहां एक ओर पिता के निरंकुश अधिकारों का अंत हो रहा था ,वही दूसरी ओर तरफ पारिवारिक सम्पति पर सामूहिक स्वामित्व की चेतना विकसित हो रही थी। अतः यह माना जा सकता है कि ब्राह्मणकाल में पुत्रों के जन्मना स्वत्ववाद का सिद्धांत अस्तित्व में आ चुका था। किंतु परवर्ती युग में यह सिद्धांत प्राचीन परम्परा के अनुकूल न होने के कारण धर्मसूत्रों द्वारा अनुमोदित हुआ।

परिवार ऐसी आधारशिला है जो व्यक्ति के समग्र जीवन को सुदृढ़ बनाने में कारगर है। हमारी प्राचीन परंपरा संयुक्त परिवार की रही है और अच्छी तरह से इसका विश्लेषण करें और इस बात पर चिंतन करें तो हमें यह आभास होगा की हमारी पुरातन सभी परंपराएं उन्नत रही हैं।

वर्तमान में भौतिक अंधानुकरण के कारण सभी दौड़ रहे हैं उस दौड़ में परिवार के सभी सदस्य भाग रहे हैं और एकाकी रहना चाहते हैं परंतु कुछ समय बाद यह एकाकीपन मानसिक अवसाद का जनक हो गया है व्यक्ति अपनी बात कह नहीं पाता और इधर उधर ग्रुपों में, पार्टियों में जाकर अपना समय बिताना चाहता है।

प्राचीन काल में बच्चा अपने दादा दादी नाना नानी आदि बड़ों के लाड़ दुलार से बढ़ता था और अच्छे संस्कार सीखता था। सब संस्कार परिवार से ही आते हैं परिवार विकास का आधार है प्रथमदृष्टया परिवार में ही रहकर अपना अधिक समय व्यतीत करते हैं परंतु वर्तमान का परिदृश्य बिल्कुल बदल गया है व्यक्ति एक दूसरे के लिए समय निकाल पाना बड़ा कष्टकारी समझ रहा है बड़ों का सम्मान कम होने लगा हैं। भौतिक लालसा मनुष्य की ज्यादा बढ़ गई है और इस लालसा की पूर्ति के लिए वह लगातार मशीनरी की तरह काम कर रहा है और स्वयं को रोगों का घटक बना रहा है। एक दूसरे के लिए हम यह सुनते हैं समय नहीं है समय नहीं है। समय जाने कहां चला गया है। हर व्यक्ति मैं व्यस्त हूं मैं बिजी हूं कहते हुए दिखाई देता है सुनाई देता है। पति को पत्नी के लिए पत्नी को पति के लिए बच्चों के लिए समय का अभाव है।

कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी की कामवाली बाई के भरोसे अपने बच्चे, क्रैच में अपने बच्चे पल रहे हैं। वहां पर जो आत्मीय वातावरण मिलना चाहिए वह मिल नहीं पा रहा यह हमें अच्छी तरह समझना चाहिए कि पुरानी जो परिवार की प्रथा थी उनके संस्कार थे उन्हें हमें जीवित रखना है उसी से सत संस्कारों की आधारशिला खड़ी होगी

आज हम यह बहुत सुनने में मिलता है की उसे अवसाद हो गया है वह डिप्रेशन में चला गया है उसे मनोरोग हो गया है। मानसिक रोगी हो गया है उसका मनोचिकित्सक से इलाज कराना है। पहले मनुष्य अपने परिवार में सुख दुख सब कह देता था एक को नहीं तो दूसरे को समय होता था संयुक्त परिवार रहता था तो झगड़े हो परंतु प्रेम भी रहता था और संस्कार भी रहते थे। साथ साथ भोजन बनना, खाना खाना यह सब ऐसे घटक थे जो आत्मीयता का विकास करते थे। आज सभी मोबाइल संस्कृति में इस तरह डूब गए हैं कि किसी दूसरे की परवाह ही नहीं करते और इन सब का परिणाम यह है कि किसी न किसी शारीरिक मानसिक रोगों से ग्रसित हो गए हैं। बाहरी लोगों के

आमदनी के स्रोत बन गए हैं।

तनाव होने पर पहले घर में ही सब चीजों का तुरंत निराकरण हो जाता था। दादा दादी अपनी प्रेम की फुहार से सब कुछ तुरंत एक क्षण में दूर कर देते थे।

आज पुनः हमें उस आधार की ओर लौटना होगा जो हमारी संस्कृति का मूलाधार था।

निष्कर्ष :–

अन्त में यह कहा जा सकता है कि उतर वैदिककाल से स्मृतिकाल तक पारिवारिक संगठन बहुत कुछ पूर्ववैदिक युग के समान था। जबकि इसमें आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तनों के कारण कुछ अंतर भी आ गये थे किंतु संयुक्त परिवार की परम्परा अभी समाप्त नही हुई। संयुक्त परिवार की अपनी विशेशता एवं उपयोगिता थी। प्राचीनकाल की सामाजिक स्थिति में संभवत ऐसे परिवार की उपयोगिता अधिक थी अतएव उनके विघटन को रोकने के लिए प्राचीन विचारको ने परिवार के विभिन्न सदस्यों को एक–दूसरे से प्रेम एवं सौहार्दपूर्ण व्यवहार करने का बार–बार निर्देश किया है।

***व्याख्याता**
सामान्य संस्कृत,
राजकीय आचार्य संस्कृत, महाविद्यालय
भरतपुर, (राज.)

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. वेदालड्कार हि.परि मीमासा, पृ.1
2. शतपथ ब्राह्मण 2/4/2/16
3. अर्थवेद 18/4/75
4. ऋग्वेद, 10/1/5
5. कपाडिया हिन्दू किनशिप, पृ.12
6. शतपथ ब्राह्मण 3/1/3/2–4
7. अर्थवेद 2/30/1–3
8. याज्ञवल्क्य स्मृति द्वितीय अध्याय
9. ऋग्वेद
10. याज्ञवल्क्य 2/110
11. शतपथ ब्राह्मण 3/2/1/18
12. अर्थवेद 3/30/1–3
13. राव, उतर वैदिक समाज एवं संस्कृति, पृ. 127